सोरों-सामग्री पर एक दृष्टि

तथा

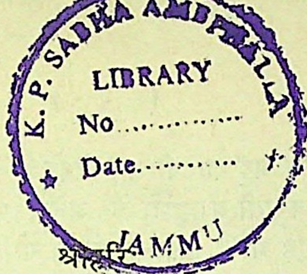
गोस्वामी तुलसीदासजी की जन्म-भूमि

निरंजन तिवारी
५०७; मम्फोर्डगंज, इलाहाबाद-२

[दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा
आयोजित
'तुलसी विचार परिषद्' के अवसर पर]

डा० गोवर्धननाथ शुक्ल
एम. ए. पी-एच. डी.
रीडर, संस्कृत-हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय ।

१९६०



श्रीहरिः

सोरों सामग्री पर एक दृष्टि

और

तुलसी का जन्म-स्थान

ले०—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल

[रीडर हिन्दी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय]

परमादरणीय विद्वज्जन।

जीवन के गत ३०-३५ वर्षों से भक्त प्रवर तुलसी का मैं एक क्षुद्रतम पाठक एवं प्रशंसक रहा हूँ। उनकी पूत वाणी ने इस जन पर व्यक्त, अव्यक्त, अनेक सात्विक संस्कार जमाए हैं। अतः मैंने सदैव रसाल की रसमयता पर ही दृष्टि रखी है। पादप संख्या गिनने के व्यर्थ श्रम से, सदैव अपने को सुरक्षित रखा है। किन्तु गत कतिपय वर्षों में जब गोस्वामी तुलसीदासजी की जन्म-भूमि 'सोरों' का नारा बुलन्द किया गया तो मुझे अत्यन्त विवशता पूर्वक इस विवाद में उतरना पड़ा।

सम्वत् १९९३ में पं० रामनरेश त्रिपाठी की रामचरित मानस पर लिखी भूमिका में मैंने सोरों की चर्चा पढ़ी थी। उसमें त्रिपाठी जी ने गो० तुलसीदासजी की जन्म–भूमि सोरों सिद्ध करने का यत्न किया था। और अपने प्रमाण में पं० गोविन्द वल्लभ भट्ट एवं व्याकरणाचार्य पं० गंगावल्लभजी शास्त्री के कथनों को दिया था, तभी से में इस प्रश्न पर निष्पक्ष रूप से विचार करता चला आ रहा हूँ। क्योंकि सोरों से मेरा अपना भी संबंध है। और

पं० गोविन्द वल्लभ भट्ट शास्त्री मेरे रिश्ते के भाई भी होते हैं। सोरों में हम उदीच्य गुजराती ब्राह्मणों के अनेक परिवार तो हैं ही, मेरा अपना श्वसुर गृह भी है। सोरों पंडित गोविन्द वल्लभ भट्ट शास्त्री की भी जन्म-भूमि, विद्या भूमि है। मेरे पिता स्वर्गीय पंडित यादवनाथ जी शुक्ल पं० गोविन्दवल्लभ शास्त्रीजी के गायत्री मंत्रोपदेष्टा थे इस नातेमें उनका गुरु भाई भी हूँ। यहाँ इन व्यक्ति-गत तथ्यों को दे देने से विद्वज्जनों को इस प्रश्न पर निष्पक्ष विचार करने के लिए थोड़ी पृष्ठभूमि मिलेगी। कुछ इन्हीं कारणों से मैं इस प्रश्न पर विचार करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ।

मुझे विवाह से पूर्व और पश्चात् सोरों जाने और रहने के अनेक अवसर मिले हैं। 'तुलसी की जन्मभूमि' की दृष्टि से भी सोरों की कई बार यात्राएँ की हैं। अतः वहाँ की रीति रिवाज, बोल-चाल, नीति भाषा, वेश-भूषा आदि का निकट से अध्ययन करने का मुझे पूरा-पूरा अवसर मिला है। सोरों के अनेक निकटवर्ती स्थानों में घूमा हूँ। उस कस्बे को देखने-भालने, वहाँ के निवासियों के निकट संपर्क में आने के अवसर कई बार मिले हैं। अतः ज्यों-ज्यों 'सोरों सामग्री' का प्रवाद बढ़ता गया, मैं इस दिशा में बड़ी गंभीरता और जागरूकता के साथ विचार और अध्ययन करता गया हूँ और अन्त में जिन निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ, वह विद्वानों के समक्ष रख देना चाहता हूँ।

तुलसी की जन्म-भूमि विषयक अपनी मान्यताएँ प्रस्तुत करने से पूर्व, मैं अपने अग्रज पं० गोविंद वल्लभ भट्ट और उनकी 'सामग्री' पर कुछ शब्द कहूँगा। उसके बाद इस पक्ष के कुछ विद्वानों के मत पर भी विचार प्रस्तुत करूँगा। इस प्रयत्न में मेरी लेशमात्र भी यह इच्छा नहीं कि मैं किन्हीं के हृदयों को आघात पहुँचाऊँ अथवा व्यक्ति गत आक्षेप या कटुता उत्पन्न करूँ। किन्तु निष्पक्ष रूप से विद्वानों को

इस समस्या पर विचार करने के लिए प्रेरित करना चाहता हूँ, यदि 'सोरों-सामग्री' तथ्य है, तो उस पर विचार होना चाहिए और सत्य सामने आना चाहिए। हिन्दी साहित्य का यह दुर्भाग्य रहा है कि उसके अध्येता सदैव वैज्ञानिक पद्धति से बचते रहे हैं, और अपने निष्कर्षों, मान्यताओं और विश्वासों में तर्कशून्य होकर अटकलों जनश्रुतियों तथा अन्ध विश्वासों से काम लेते रहे हैं। आज का वैज्ञानिक युग अन्ध श्रद्धा, अन्ध परम्परा, रूढ़ि ग्रस्त किंवदंतियों अथवा जनश्रुतियों का कायल नहीं। अब तो तर्कपुष्ट प्रमाण ही अपेक्षित होंगे अन्यथा मौन ही समीचीन होगा।

'सोरों सामग्री' के पूर्ण परिचय में पं० गोविन्द वल्लभ भट्ट ने गत वर्ष संवत् २०१५ वि० में बम्बई से एक पुस्तक छपवाई है। प्रकाशक हैं—उन्हीं के सुपुत्र पं० रामवल्लभ शास्त्री सहयोगी सम्पादक नवभारत टाइम्स २४४ बालकेश्वर रोड, बम्बई-६। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने सोरों संबंधित-तथा कथित प्राचीन सामग्री तो दी ही है, कुछ अपना और अपने परिवार के परिचय के साथ सोरों के कतिपय तीर्थ स्थानों के फोटो एवं वहाँ के कुछ श्रद्धेय वृद्ध विद्वानों के चित्र भी दिए हैं। १४ पृष्ठों के उपोद्घात में उन्होंने अपनी कठिनाइयाँ और 'सामग्री संरक्षण' की कहानी दी है। आगे १८ पृष्ठों की भूमिका में श्री वेदव्रत शास्त्री ने सोरों के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत किए हैं। उसके आगे सूकर क्षेत्र माहात्म्य, कवि कृष्णदास रचित, दोहारत्नावली, श्री रत्नावली के पद, रत्नावली चरित, अष्ट सखामृत तुलसी प्रकाश। इस प्रकार यह पुस्तक १०० पृष्ठ की है।

इस पुस्तक की आलोचना करने से पूर्व दो वस्तुओं की चर्चा और करनी है। एक तो श्रीयुत् भद्रदत्त शास्त्री का 'हिन्दुस्तानी' में छपा सवा छः पृष्ठो का एक लेख, दूसरा सनाढ्य पत्रिका का 'तुलसी स्मृति

अंक'। इन दोनों में छपी सामग्री की आलोचना हम यथा स्थान करेंगे। सर्व प्रथम हम पं० गोविन्द वल्लभ भट्ट शास्त्री जी की उक्त पुस्तक को लेते हैं, जिसमें सोरों संबंधी सभी सामग्री की चर्चा आ गई है। 'सोरों सामग्री' के विषय में मेरा अपना मत है कि उक्त पुस्तक में 'सोरों सामग्री' के संदर्भ में शास्त्री जी ने कुछ अपना और अपने परिवार का परिचय भी सम्मिलित कर दिया है जो अनावश्यक है। यहाँ क्रमशः में उनके तर्कों का उत्तर देने का प्रयत्न करूँगा।

(१) शास्त्री जी ने लिखा है कि 'कनवर रोग के लिए सोरों के योगमार्ग मुहल्ले के तथा कथित तुलसी के स्थान की मिट्टी लाभ पहुँचाती है और यह बात उन्होंने अपनी माँ से सुनी थी। परन्तु यह बात भी सभी जानते हैं कि कनवर गंगा मिट्टी से अथवा किसी भी शुद्ध गीली चिकनी मिट्टी के लगाने से अच्छा हो जाता है। यह पश्चिमी यू० पी० के लोग और विशेषकर इधर की सभी वृद्ध महिलाएँ जानती हैं।

फिर शास्त्री जी की माता स्वयं लखनऊ की थीं। अतः वे योग-मार्ग मुहल्ले के उस स्थान का महत्व स्वयं नहीं जानती होंगी जब तक कि वह स्वयं किसी से न सुनें।

(२) मैं स्वयं औदीच्य गुजराती ब्राह्मण हूँ और वहाँ के समस्त गुजराती परिवारों से हमारे संबंध हैं। अतः जिन दोहों के प्रचलित होने की चर्चा शास्त्री जी ने की है, वे औदीच्य गुजरातियों में तो क्या, सोरों के लोगों तक में प्रचलित नहीं। साथ ही प्रति वर्ष आने वाले यात्रियों को भी मैंने देखा व सुना है। कोई भी यात्री-दल उन दोहों से परिचित नहीं। शास्त्री जी की पुस्तकों में उद्धृत दोहों में प्रथम दोहा कबीर के नाम से भी प्रसिद्ध है। शेष दूसरा, तीसरा दोहा उन्होंने तथा-कथित रत्नावली दोहा-संग्रह से दिए हैं। जिसकी प्रामाणिकता स्वयं संदिग्ध है।

(३) पं० दशरथ शास्त्री केवल संस्कृत के विद्वान् थे। जिनका कथन आधुनिक शोध की दृष्टि से वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। उनकी तुलसी विषयक बात श्रद्धावश ही कही गई है। उनका अनुमान शास्त्री जी ने इसीलिए प्रमाण मान लिया कि वे शास्त्री जी के विद्या-गुरु थे।

(४) फिर कनवर रोग की मृत्तिका के लिए सोरों में अन्य और भी अनेक ठिकाने हैं। स्थानीय मित्रों ने मुझे दूसरे भी स्थान बताए हैं।

(५) गंगा तट पर स्थित संस्कृत पाठशालाओं के अनेक अड्डों को 'छोटी काशी' कहने का रिवाज संस्कृत के विद्वानों में रहा है। अनूपशहर और कर्णवास के विषय में भी 'छोटी काशी' शब्द प्रचलित है। पं० उदय शंकर भट्ट इस तथ्य को जानते हैं।

(६) दण्डी संन्यासी वाली आख्या शास्त्री जी ने कई सज्जनों को कई प्रकार से चमत्कार के साथ सुनाई है। वे दंडी संन्यासी जी शास्त्री जी को एक संध्या में तुलसी के विषय में अनुमान या अटकल देकर दूसरे दिन प्रातः अंतर्धान हो गए थे। वही चमत्कारी कथा शास्त्री जी के भ्रम में मूलतः है। इससे पूर्व 'तुलसी सामग्री' का संबंध सोरों से न कभी रहा, न किसी ने इसे उठाया। अतः यह कथा ही सोरों सामग्री के मूल में संदेह उत्पन्न करती है।

(७) रत्नावली दोहा-संग्रह की मूल पुरातन प्रति यदि 'खो गयी,' तो नवीन प्रति कैसे प्रकाश में आई? प्रतिलिपिकार उसे कैसे प्राप्त कर सका, यह एक संदिग्ध कथा है। वहीं के कतिपय विद्वान् उसे संदिग्ध बताते हैं।

(८) शास्त्री जी को २५२ वार्ता की पुस्तकों की खोज की क्या आवश्यकता थी? वार्ताएँ तो सदैव से ही बहुत प्रसिद्ध रही हैं। उसकी प्राचीनतम प्रति प्रकाश में बहुत पहले आ चुकी थी।

शास्त्री जी कर्मकाण्डी और प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं। अतः उनका बहु प्रवासी होना नैसर्गिक है। तुलसी शोध के लिए वार्ता पुस्तकों की खोज में वे घूमे हैं। यह उनकी अपनी कथा मात्र है।

(९) सन् १९१९ की जलियाँवाले बाग की घटना से 'तुलसी-जन्म-भूमि-शोध' से कोई सीधा संबंध नहीं। उसके उल्लेख से शास्त्री जी का क्या तात्पर्य है? स्पष्ट नहीं। इससे वे अपने को भ्रमणशील ही सिद्ध कर सके हैं, अधिक कुछ नहीं। मार्शल लॉ के लागू होने से उन्हें सोरों आना पड़ा, यह बात तो थी ही। सोरों उनका अपना घर है। अतः भय-त्रस्त होकर वे लौट आये। फिर अमृतसर में तुलसी संबंधी खोज' से क्या तात्पर्य ?

(१०) जो सामग्री तुलसी की जन्म-भूमि के सम्बन्ध में महत्व-पूर्ण हो सकती होगी और विद्वानों को विचारणीय हो सकती होगी, उसके लिए शास्त्री जी या तो 'खोगई' या 'कोई ले गया' या 'प्राप्त नहीं' या 'नष्ट हो गई' आदि बातें कहकर टाल देते हैं। जो सामग्री सीधे सम्बन्ध नहीं रखती, उसे व्यर्थ में ही प्रकाश में लाने की चेष्टा की गई है। सोरों प्राचीन तीर्थ स्थान है। वहाँ के पंडों के पास पाँच सौ वर्षों तक के कागज दस्तावेज सुरक्षित हैं। फिर तुलसी सम्बन्धी सामग्री सुरक्षित क्यों नहीं? वहाँ के अनेक पुराने पंडे विद्या-व्यसनी, विद्वान् एवं स्वाध्यायशील रहे होंगे। वे निजी संग्रहों के लिए ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करते रहे होंगे, जैसा वहाँ आज भी प्रचलित है और सभी पंडे बहुल तीर्थों में ऐसा ही होता है। विशेष कर सोरों प्रयाग और पुष्कर में। फिर सोरों में तुलसी के ग्रंथ और उनसे संबंधित सामग्री न मिले यह सन्देहजनक है।

यह दुर्भाग्य है कि शास्त्री जी को जीवन-भर 'उड़ाने वालों' साहित्यिक 'चोरों' से ही भेटा हुआ है। पं० पद्मसिंह शर्मा की 'पक्ष में सम्मति' भी किसी ने उड़ा ली। फिर मजे की बात यह है कि उड़ाने

वाले ने उस उड़ाई सामग्री का आज तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई उपयोग भी नहीं किया। सोरों से न जाने इन 'उड़ाने वालों' को क्या दुश्मनी थी।

(११) श्री जगन्नाथदास रत्नाकर जी ने 'पक्ष' में अपना मत 'मौखिक' ही दिया। आश्चर्य है इतना बड़ा साहित्यकार इतनी बड़ी समस्या पर दो शब्दों में अपने विचार या अपना मत नहीं लिख सका। जिसका शास्त्री जी सम्यक् उपयोग कर सकते।

(१२) गोपीवल्लभ जी उपाध्याय प्रसिद्ध पत्रकार हैं। वे शास्त्री जी के पुराने साथी हैं, उनका अपना मत इस विषय में कुछ नहीं। शास्त्री जी के अभिन्न सजातीय बाल मित्र होने के नाते उन्होंने अपना मत शास्त्री जी से मिला दिया है। न तो उन्होंने इस विषय में कभी विशेष रुचि ली, और न कुछ लिखा ही। यद्यपि वे कई प्रसिद्ध पत्रों का सम्पादन कर चुके हैं। भगवद्दया से आज भी वे वर्तमान हैं। वे इस विषय में अपने तर्क क्यों नहीं प्रस्तुत करते।

(१३) शास्त्री जी का कथन है कि उनके लेख को उस समय के सभी मासिक पत्रों ने अस्वीकृत कर दिया। या तो ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर लिखे लेख का दोष है या फिर उन सम्पादकों का मतिभ्रम जो ऐसे महत्वपूर्ण लेख को अस्वीकार करते रहे।

(१४) शास्त्री जी ने जो पत्र अपनी पुस्तक में राजापुर के किसी सज्जन का छापा है, उसका दूसरा अनुच्छेद स्वयं स्वीकार करता है कि—"सोरों के पक्ष में लिखित कोई प्रमाण नहीं मिलता।" केवल मानस बालकाण्ड के प्रसिद्ध दोहे—'मैं पुनि' के 'अचेत' शब्द से सोरों को उनकी जन्म-भूमि होने की अटकल लगाई गई है। किन्तु साथ का दूसरा दोहा ही इस 'अचेत' शब्द की व्याख्या स्वयं कर देता है। उससे स्पष्ट हो जाता है कि यह अचेतावस्था अवस्था-जन्य नहीं, अपितु बुद्धिगत अक्षमता की सूचक है। जिसे ठीक संदर्भ से

समझने पर स्पष्ट हो जाता है कि यह अचेतावस्था—अथवा मोहावस्था[1] 'जौवन ज्वर' तथा 'जुवति-कुपथ्य' जन्य थी।

गोस्वामी जी ने वहीं पर आगे लिखा है—

'श्रोता बकता ग्यान निधि, कथा राम को गूढ़।
किमि समुझों मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित विमूढ़॥[2]

इस दोहे में 'अचेत' शब्द की स्पष्ट व्याख्या है। गुरु ने राम कथा कहते समय शिष्य की अवस्था कृत पात्रता पर अवश्य ध्यान रखा होगा।[3] बच्चे को कथाएँ उस अवस्था में ही कही जाती हैं, जब उसे कार्य-कारण सम्बन्ध का पूरा-पूरा बोध हो जाता है। अन्यथा वक्ता का श्रम व्यर्थ होता है। अतः राम-कहानी सुनने की तुलसी की अवस्था १०-१५ वर्ष की रही होगी क्योंकि यही अवस्था 'महा मोह तम पुंज' की होती है। किशोर तुलसी का एक अनाथ वयस्क बालक के रूप में पर्यटन शील महात्मा के साथ किसी 'सूकर खेत' आना तो माना जा सकता है, किन्तु उससे उनकी जन्म-भूमि कथमपि सिद्ध नहीं हो सकती। अभुक्त मूल में उत्पन्न बालक की जब धाय[4] भी मर गई, तो यही सम्भव था कि वह कुछ वर्ष बाद किसी का आश्रय पाकर भ्रमण में पड़ जाता। अतः उक्त पत्र से अथवा उसके लिफाफे के चित्र से तुलसी सोरों के नहीं सिद्ध किए जा सकते।

(१५) 'सुधा' सम्पादक ने शास्त्री जी का उक्त विषय पर लिखा लेख तो ले लिया, परन्तु खेद है न तो उसे छापा न लौटाया ही। फिर ३१-१०-२८ के एक पत्र में लिख दिया—'स्थानाभाव से लेख छापा नहीं जा सकता।' यह उत्तर 'सुधा' सम्पादक उसी क्षण

१—महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर।

२—मानस बालकाण्ड दोहा-५०

३—जदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥

४—नाम 'मुनिया' देखो—तुलसीदास—आचार्य सी० चतुर्वेदी, पृ० ४

दे सकते थे। फिर आश्चर्य है कि यह लिफाफा शास्त्री जी के पास सुरक्षित है, लेख नहीं। सन् १९२९ की माधुरी में जब यह लेख पुन: छपा, तो उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई—शास्त्री जी ने स्पष्ट नहीं बताया। केवल 'उथल-पुथल मच गई' कह दिया है। इसकी क्या व्याख्या है? फिर इसी पुस्तक में 'साहित्यिक शौर्य' शीर्षक में शास्त्री जी ने अपने एक-मात्र लेख को ऐसा निर्णयात्मक अभूतपूर्व सिद्ध किया है कि उसके आधार पर अनेक महानुभावों ने गोस्वामी जी को सोरों का बता दिया। उन महानुभावों के नामों की सूची शास्त्री जी ने नहीं दी। साहित्यिक चोरों की चोरी के डर से शास्त्री जी सोरों सम्बन्धी तथा कथित 'सामग्री' को छाती से लगाए लिए-लिए फिरे और अन्त में विद्वानों को बताना बन्द कर दिया। उनका मत है डा० भारद्वाज उन्हीं की सामग्री से लाभान्वित हुए हैं।

(१६) सन् १९३५ की बम्बई की सभा में उपस्थित 'तथा-कथित' बड़े-बड़े साहित्यिकों के नाम शास्त्री जी ने अपनी पुस्तक में नहीं दिए जबकि इस प्रसंग से असम्बन्धित नाम एवं चित्र अपने दोनों बंधुओं के दे दिए हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी जी का हवाला शास्त्री जी ने दिया है, उसकी आलोचना हम आगे करेंगे। श्री त्रिपाठी जी शास्त्री जी के कथन को प्रमाण मान कर ही आगे चले हैं। इसी प्रकार डा० दीनदयालु गुप्त ने नंददास की वार्ता में तुलसीदास पर जो आनुषंगिक चर्चा की है, उस पर भी हम आगे विचार करेंगे।

(१७) शास्त्री जी ने अपने पक्ष में बाँदा के गजेटियर की चर्चा की है। जिसका पता उन्हें स्वयं डा० माता प्रसाद गुप्त से लगा है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपना मत शास्त्री जी के विपक्ष में दिया है। बाँदा के गजेटियर से सोरों जन्म-भूमि का पक्ष

समर्थित नहीं होता,* भ्रमवश शास्त्री जी ने उसे अपने पक्ष में मान लिया है। प्रश्न है, शास्त्री जी ने एटा जिले के गजेटियर से काम क्यों नहीं लिया ? गजेटियर तुलसी के वर्षों उपरान्त लिखे गए हैं। गजेटियर कैसे लिखे-लिखाए जाते हैं—यह विद्वानों से छिपा नहीं। फिर बाँदा के गजेटियर में तुलसी की चर्चा है, एटा के गजेटियर में नहीं। आश्चर्य है कि एटा के गजेटियर में न तुलसी की चर्चा है, न उनके भाई नंददास की और न उनके समसामयिक किसी व्यक्ति की। फिर बांदा के गजेटियर में "resident" अथवा a devotee from" शब्द दिया है जो शुद्ध अनुश्रुति के आधार पर है। वहाँ कहीं भी "born" शब्द नहीं। फिर तुलसी जैसे गृह-त्यागी, वीतरागी महात्मा को राजापुर ही जाने की क्या आवश्यकता थी। वह भी यमुना किनारे। कृष्ण भक्त ही यमुना का ध्यान रखते हैं। जो जीवन भर काशी, चित्रकूट और अयोध्या रहा, वह राजापुर क्यों बसाता। अवश्य ही राजापुर पहले से ही उसका अपना स्थान रहा होगा। बाद में किसी संत साहचर्यवशात् अनाश्रयत्वात् उसने राजापुर छोड़ दिया होगा। तुलसी ने अपने निवास स्थानों[1] की चर्चा प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से अपने काव्यों में माहात्म्य रूप में कर दी। है। उसने कहीं भी 'शूकरखेत' का महत्व अथवा भगवान् वाराह का माहात्म्य नहीं कहा। जबकि भगवान् वाराह और उनका

---

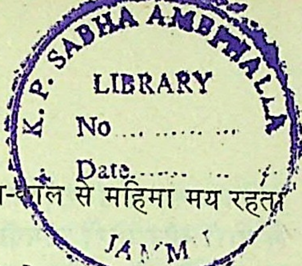
* गजेटियर की पंक्तियों के लिए देखिए शास्त्री जी की पुस्तक का टाइटल पृ० ४।

१—(अ) मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यानि खानि अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कसन—मा० अर०

(आ) चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तनु नहिं संसारा।
सब विधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धि प्रद मंगल खानी।

(इ) अब चित चेतु चित्रकूटहि चलु—वि० प०।

(उ) सीतावट तीर्थराज, वारिपुर दिगपुर-कवि-१३८



पुरातन स्थान "शूकर क्षेत्र" प्राचीन पुराण-काल से महिमा मय रहता चला आया है।

(१८) खेद है कि राजर्षि टंडन जी के सुझाव पर शास्त्री जी ने 'कई मास बाद' शुक्ल जी से मिलने की चेष्टा की, किन्तु उनका स्वर्गवास होगया। खोज अनुरागी, भ्रमणशील शास्त्री जी शुक्ल जी से मिलने काशी न जा सके। अच्छा हुआ शुक्ल जी के सामने यह प्रकरण न आ सका। अन्यथा इस प्रकरण को इतने दीर्घजीवी होने का अवसर ही न मिलता। वे सत्यनिष्ठ थे। अतः कृपालु शास्त्री जी ने उन्हें इस फन्दे से मुक्त ही रखा। जहाँ शास्त्री जी का मत है—कि यदि शुक्ल जी से भेंट होगई होती, तो उनका मत पक्ष में होता। वहाँ मेरा अपना मत है कि शुक्ल जी के तर्क, कुठार और सत्य-प्रहार के आगे इस मत का समूलोच्छेदन ही होगया होता, और आज के साहित्यिकों के सामने यह भ्रम पादप वातुल भूत की भाँति खड़ा ही न हो पाता। फिर शास्त्री जी को शुक्ल जी के तुलसी सम्बन्धित विचार भी अवगत थे। अतः शुक्ल जी से भेंट वे जान-बूझ कर टालते रहे।[1]

(१९) सोरों की तथा कथित सामग्री को शास्त्री जी ने ऐसा जादू का पिटारा—अथवा अनमोल 'रत्न-मंजूषा' सिद्ध कर रखी है कि जो उसे देखता है, वह उसे उड़ाने या चुराने की चिन्ता पहले करता है और उस पर विचार बाद में। फिर मजे की बात यह है कि आज तक शास्त्री जी इस सामग्री को सदैव अपने मतावलम्बियों को ही दिखाते रहे। साहित्यक जगत् में खुले आम रखने में उन्हें सदैव संकोच रहा। मेरे और डा० हरवंशलाल जी के अनुरोध पर भी परीक्षण के हेतु उन्होंने उस सामग्री को हमारे विश्वविद्यालय में नहीं छोड़ा। शायद उन्हें अलीगढ़ विश्वविद्यालय

१ देखिए—हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, पृष्ठ ११८—११९

'मान्यता संपन्न संस्था' प्रतीत नहीं हुई। इसका मात्र हेतु यही है कि मैं सोरों और सोरों सामग्री की असलियत से परिचित रहा हूँ। यदि शास्त्री जी को स्वयं उक्त सामग्री पर दृढ़ विश्वास और भरोसा होता, तो उन्हें न तो झिझक होती और न वे अपने अनुमोदकों की तलाश में घूमते। वास्तविकता तो यह है कि इसके हठ में शास्त्री जी को अपनी जन्म-भूमि का मोह ही अधिक है, और कुछ नहीं।

सोरों में तुलसी अथवा नंददास जी का घर कहीं नहीं है। कहीं आस-पास न रामपुर का ही पता है। सोरों में नंददास को कोई जानता भी नहीं। इसे 'वार्ता' के शीर्षक में स्पष्ट करेंगे। सोरों का अब यह स्थान (तुलसी घर) अटकल के आधार पर २५-३० वर्षों से कहीं किसी मुसलमानों के मुहल्ले में बताया जाने लगा है। जो मुझे अत्यन्त संदिग्ध लगा है। वह वाराह-मंदिर तथा कथित नरसिंह मंदिर तथा 'सुकलों' के मुहल्ले से काफी दूर है।

(२०) शास्त्री जी की सोरों सम्बन्धी कर गत सामग्री की रासायनिक परीक्षा तो होनी ही है, पर सोरों में आज भी अनेक पुराने पंडों के घर हैं जहाँ पांच-पांच सौ वर्षों की बहियाँ, कागज और स्याही आज भी सुरक्षित मिलेंगी। अतः उक्त सामग्री के रासायनिक परीक्षकों को इस तथ्य से भी अवगत एवं सावधान रहना चाहिए।

"तुलसी सामग्री" पर उपर्युक्त तर्क प्रस्तुत करने के उपरान्त मैं शास्त्रीजी के द्वारा प्रस्तुत कतिपय पाण्डुलिपियों के फोटो एवं अन्य साक्ष्यों पर आता हूँ।

शास्त्रीजी के द्वारा प्रस्तुत पाण्डुलिपियों के कभी एक पृष्ठ तो कभी दो पृष्ठ ही मिलते हैं। जिनकी लिखावट १८वीं १९वीं शताब्दी की हैं। जो स्वाध्यायप्रेमी लेखनप्रिय पूर्वज पंडों ने अपने स्वाध्याय प्रेम से प्रेरित होकर लिखीं होंगी। उनकी लिखावट

राजापुर की प्राचीन पाण्डुलिपियों से नहीं मिलती। मेरे निजी संग्रह में एक प्राचीन हस्तलिखित मानस है, उसकी लिखावट और शास्त्रीजी की पाण्डुलिपियों की लिखावट का मिलान किया जा सकता है। उक्त मानस के कतिपय काण्ड १५० वर्ष पुराने हैं।

'तुलसीदास संबंधी प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' शीर्षक से एक लेख श्री भद्रदत्त शास्त्री कासगंज का कुछ वर्ष पूर्व 'हिन्दुस्तानी' में छपा था। उसमें उन्होंने ग्यारह ग्रंथों का हवाला दिया है। इन ग्यारह ग्रन्थों से गोस्वामी जी सोरों के सिद्ध नहीं होते फिर शास्त्रीजी की अपनी गोस्वामी तुलसीदास पुस्तिका में दी हुई 'सोरों सामग्री' में 'रत्नावली चरित' ही एक उभयनिष्ठ (Common) पुस्तक है। अन्य पुस्तकें भद्रदत्त शास्त्री जी की सूची से नहीं मिलतीं। प्रथम ग्रंथ 'रत्नावली चरित' का संवत् १८२९ हैं। और लेखन काल भी वही है। इसमें बड़ा भारी वदतो व्याघात दोष है। रामपुर और योग मारग दोनों में 'पढ़त' और 'बसत वर्त्तमान कालीन क्रियाओं के रूप दिए हैं। रामपुर से सुकुलों का परिवार कब, कैसे योग मारग में आगया, इसकी कहीं चर्चा नहीं इसमें गोस्वामीजी की सुसराल 'बदरिका' बताई गई है। जबकि सोरों में वाराह कुण्ड के पार पूर्व में १ मील पर 'बदरिया' गाँव स्थित है उसे 'बदरिया' कहा जाता है, 'बदरिका' नहीं। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने उसे भ्रमवश १॥ फर्लांग बता दिया है। सुसराल के हवाले से गोस्वामीजी की जन्म-भूमि सोरों सिद्ध नहीं होती। अन्य सामग्री—वर्षलग्न, पंचवर्गी आदि बेमतलब और निरर्थक वस्तुऐं हैं। भक्तमाल से भी 'सोरों उनकी जन्म-भूमि सिद्ध नहीं होती। श्री विष्णुस्वामि चरितामृत से सोरों को वाराह क्षेत्र सिद्ध किया गया है। उससे गोस्वामीजी की जन्मभूमि सिद्ध नहीं होती। ये ग्रन्थ सोरों माहात्म्य के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। शेष दोहावली आदि आठ ग्रन्थ प्राचीन पण्डित परिवारों में उपलब्ध स्वाध्यायार्थ लिखी

सामग्री जैसी ही है। उससे तुलसी की जन्म-भूमि के प्रश्न से सीधा संबंध नहीं।

सनाढ्य जीवन के 'तुलसी-स्मृति' अंक को 'प्रोपेगेण्डा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके दो लेखों की विशेष रूप से चर्चा डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपने 'तुलसीदास' नामक ग्रंथ में पृष्ठ २६-३० पर की है। इन्हीं दो लेखों से मिलती-जुलती सामग्री सारे अंक में भरी पड़ी है। डा० गुप्त का मत भी वही है जो उपर्युक्त तर्कों में प्रस्तुत किया जा चुका है कि लगभग २४ वर्ष पूर्व 'सूकर खेत' को लेकर जो अटकल की बातें किन्हीं व्यक्तियों से शास्त्री जी ने सुनीं थी, उसी धज्जी को शास्त्री जी ने 'थान' का रूप दे दिया है। उससे तुलसी का थान (स्थान) तो सिद्ध न हो सका। हां, साहित्यिक जगत् में भ्रम फैलने में अवश्य बड़ी मदद मिली।

संक्षेप में तुलसी के जन्म-स्थान 'सोरों' के मत को लेकर चलने वाले आद्य आचार्य पं० गोविन्द वल्लभ शास्त्री, दूसरे उनकी सामग्री के उपयोगकर्ता और उसके पोषक-कासगंज निवासी डा० रामदत्त भारद्वाज और पं० भद्रदत्त जी—ये महानुभाव शास्त्री जी के भ्रम पोषक एवं अनुयायी है अतः, पृथक् रूप से उनके तर्कों पर विचार करना पिष्ट पेषण ही होगा। अब हमें डा० दीनदयालु गुप्त के कथन पर ध्यान दे लेना चाहिए। डा० गुप्त का प्रथित शोध प्रबंध-अष्ट छाप और वल्लभ संप्रदाय है। अतः नंददास जी की चर्चा में उन्होंने स्पष्ट लिखा है।

"पाटन की हस्तलिखित अष्टछाप वार्ता में नंददास को रामपुर निवासी लिखा है। भक्तमाल की टीकाऐं तथा भक्त नामावली कवि के निवास तथा जन्म स्थानों के विषय में मौन हैं। 'वार्ता' तथा 'भक्तमाल' के आधार से इस विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि नंददास गोकुल मथुरा से पूर्व की ओर स्थित रामपुर

ग्राम के रहने वाले थे। रामपुर स्थान की ठीक-ठीक स्थिति का पता लेखक (डा० गुप्त) नहीं लगा सका है। सोरों जिला एटा वाली सामग्री रामपुर की स्थिति सोरों के पास सिद्ध करती है, परन्तु जब तक इस सामग्री की प्रामाणिकता संदिग्ध है, तब तक सोरों जिला एटा का रामपुर, कवि की जन्म-भूमि नहीं कही जा सकती[१]।"

प्रस्तुत उद्धरण से डा० गुप्त को सोरों के पक्ष में शास्त्री जी ने कैसे मान लिया ? आश्चर्य और खेद दोनों हैं। वस्तुतः डा० गुप्त इस झमेले में ही नहीं पड़े। तात्पर्य यह कि उपर्युक्त चार महानुभावों में से केवल तीन ही सोरों के पक्ष में रह जाते हैं और उनमें भी दो शास्त्री जी के अनुयायी एवं उनके भ्रामक मत के प्रचारक हैं। क्योंकि ये लोग सोरों तथा उसके निकटवर्ती कासगंज निवासी हैं। अतः इनमें वही 'श्रद्धामय उल्लास' मानना चाहिए।

अब रह गया पं० रामनरेश त्रिपाठी का मत। वे पं० गोविन्द वल्लभ जी शास्त्री तथा स्व० पं० गंगावाल्लभ जी व्याकरणाचार्य के कथन को आधार मान कर चले हैं। उन्होंने अपनी मानस की भूमिका पृष्ठ ६५ पर 'तुलसीदास के जन्म-स्थान की खोज' शीर्षक में बालक तुलसी के 'सूकर खेत' पहुँचने पर आश्चर्य प्रकट किया है। अर्थात् 'सूकर खेत' उन्होंने वही मान लिया जो आज का 'सोरों' है, जिसे राजस्थान, मालवा, गुजरात 'सोरम्' कहता है। त्रिपाठी जी ने 'बालपन' शब्द का अभिधार्थ ले लिया और 'अचेत' का लक्ष्यार्थ। यदि बालपन का अभिधार्थ लेना था, तो अचेत का भी अभिधार्थ लेना चाहिए जिसका अर्थ होगा 'बेहोश' जिसे लेने में शायद उन्हें संकोच और आपत्ति होगी। दूसरे 'मूल गुसांई चरित' को त्रिपाठी जी अप्रमाणिक मानते हैं और दूसरी ओर शास्त्री जी वाले 'तुलसी प्रकाश' को प्रामाणिक मानकर उसमें लिखित घटनाओं पर विश्वास करके

१—अष्टछाप वल्लभ संप्रदाय पृष्ठ—२५६

तुलसी की सुसराल बदरिया माने बैठे हैं। उन्होंने शास्त्री जी वाली सामग्री को शायद न देखा ही है और न उस पर विचार ही किया है। त्रिपाठी जी ने अपने स्वतंत्र तर्क दिए हैं। उनके तर्कों का उत्तर क्रमशः इस प्रकार है:—

(१) नरसिंह जी का मंदिर—मंदिर अब बना है। वह वास्तव में हनुमान जी का मंदिर था। और अब भी हनुमान जी का ही है। त्रिपाठी जी ने उसे नरसिंह जी का मंदिर लिख दिया है। वह किसी नरसिह नामधारी संत का स्थान रहा होगा, मंदिर नहीं। उनके आराध्य मारुति रहे होंगे।

२—सोरों के वाराह मंदिर के पुजारी ही गुसांई हैं, शेष बस्ती गंगा-भक्त है। गंगा की ही उपासना और 'गंगा मैया की ही मान्यता है। यों तो आज वहाँ चैतन्य संप्रदाय तक का मंदिर है। नरसिह जी को त्रिपाठी जी ने सनाढ्य ब्राह्मण मान लिया है। कैसे, क्यों और किस आधार पर? इसका समाधान नहीं। नरहरि यदि कोई वहाँ होंगे, तो वे वास्तव में एक वीतरांगी महात्मा होंगे जिनके वर्ण और आश्रम का पता लगाना अब नितान्त दुस्तर है।

'अन्य प्रमाणों' में त्रिपाठी जी ने जो प्रमाण दिए हैं, वे किसी भी तर्कशील व्यक्ति के गले नहीं उतर सकेंगे। त्रिपाठी जी का संबंध सोरों से नहीं के बराबर है। अतः एक दो शब्दों के आधार वे अपना अनुमान लगा गए हैं।

'तायो' शब्द 'जाँचने' के अर्थ में सोरों में प्रयुक्त होता है, यह ठीक नहीं। प्रथम तो एक आध शब्द के आधार पर किसी कवि को किसी विशेष स्थान का नहीं कहा जा सकता, फिर सोरों में यह शब्द प्रचलित भी नहीं है। 'हो तो बिगरायल ओर को। 'में त्रिपाठी जी ने 'और को' पर ध्यान दिया है—'बिगरायल' के भोजपुरी प्रयोग को वे निगल गए हैं। फिर 'ओर को' का जो

अर्थ उन्होंने दिया है सोरों में 'अन्त के' अर्थ में प्रचलित नहीं उसका अर्थ है-प्रारंभ से ही।

'चकडोरी' का खेल सर्वत्र प्रचलित है। ग्वालियर का तो चकरी का मेला प्रसिद्ध है। अष्टछाप के कवियों ने उसकी खूब चर्चा की है यह खेल ब्रज क्षेत्र और अवधी क्षेत्र दोनों में समान रूप से व्याप्त है। उसे केवल सोरों का मानना भ्रम मात्र है।

'कुटिल कीट'-केंकड़ा सर्वत्र होता है। सोरों में ही होता हो, ऐसी बात नहीं है। फिर तुलसी की माता 'कुटिल कीट' की माँ की तरह उनके जन्मते ही मर गई है। ऐसा ऐतिहासिक साक्ष्य कहीं नहीं मिलता और न तुलसी का माँ के पेट को फाड़कर जन्मने का कहीं उल्लेख है। अन्तस्साक्ष्य के आधार पर तुलसी के जन्म से तुलसी की माता को आनन्द ही हुआ था[1]। बाह्य साक्ष्य से भी हुलसी का आनन्दित होना सिद्ध होता है[2]। शिशु तुलसी उत्पन्न होने पर 'तज' दिए गए थे। उनकी माँ मर गई, ऐसा प्रमाण कहीं नहीं मिलता। केवल सोरों में 'तिजरा कोसो टोटका' वाली बात भी अनुमान पर ही आधारित है। टोटके मात्र के लिए विधान है कि उसे फिर कर कोई कभी नहीं देखता। इसे ग्वालियर, झाँसी, दतिया आदि में तथा राजस्थान, मालवा आदि में ऐसे ही प्रयोग करते हैं। मैंने तिजारी ज्वर में यह टोटका देखा है और सभी वृद्धाओं को प्रायः इसी प्रकार करते देखा है। पसली चलना निमोनिया कहलाता है। इस टोटके को त्र्याहिक ज्वर किंवा निमोनिया दोनों में ही किया जाता है। 'माय जायो' प्रयोग मालवी में भी ज्यों का त्यों है। अतः सोरों से इसका विशेष सम्बन्ध लगाना व्यर्थ है।

१—तुलसिदास हित हिय हुलसी सी। मानस बालकाण्ड

२—सुरतिय नरतिय नागतिय, सब काहू के होय।
गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

इसी प्रकार मींजो, मेन, मोखा, माठ, मौंगी शब्द राजस्थानी एवं मालवी के हैं। यह त्रिपाठी जी स्वयं भी स्वीकार करते हैं। सोरों में प्रचलित शब्द नहीं। 'मुकी' शब्द गुज़राती में रखने के लिए आता है, 'छोड़ने' के अर्थ में नहीं। त्रिपाठी जी ने इसे भ्रमवश ही लिख दिया है। इसी प्रकार बियो, म्हाको, दारु मारवाड़ी शब्द है। इन उदाहरणों से तुलसी की जन्म-भूमि सोरों सिद्ध नहीं हो सकती। 'नार' गर्दन के लिए ब्रज में प्रयुक्त होता है। संक्षेप में त्रिपाठी जी के तर्क स्वयं उन्हीं के विरुद्ध हैं।

आगे त्रिपाठी जी ने 'वार्त्ता' साहित्य की प्रामाणिकता पर भी संदेह किया है। परन्तु 'वार्ता' साहित्य प्रामाणिक सिद्ध हो चुका है। फिर यदि नन्ददास जी की वार्ता को आधार मानकर भी चलें, तो वार्ता साहित्य में तुलसीदास सोरों के सिद्ध ही नहीं होते। 'वार्ता' में सोरों या शूकर क्षेत्र नाम कहीं नहीं आया। रामपुर भी सोरों के पास नहीं। सोरों वालों ने श्यामपुर को ही पहले का रामपुर सिद्ध करने की चेष्टा कर दी।

सारांश यह कि त्रिपाठीजी ने सुनी-सुनाई बातों के आधार पर तुलसी का जन्म-स्थान सोरों मान लिया और उनके भ्रम के मूल में भी शास्त्रीजी ही हैं। त्रिपाठीजी ने शब्दों, मुहावरों के कोई भी प्रयोग सोरों के नहीं दिए। सब मारवाड़ और गुजरात के दिए हैं। उस हिसाब से तुलसी में अरबी फारसी के जो अनेक प्रयोग मिलते हैं और अन्य जो राज-दरबारी प्रयोग हैं, वे प्रयोग सोरों के व्यक्ति के लिए नित्य अभ्यास के नहीं हो सकते।

वार्ता साहित्य—

वस्तुतः वार्ता साहित्य को 'सोरों सामग्री' के लिए व्यर्थ ही घसीटा जाता है। न वहाँ सोरों का नाम है, न नन्ददास जी ही सोरों किंवा शूकर क्षेत्र के हैं।

वार्ता में नन्ददास जी को सनाढ्य ब्राह्मण तथा तुलसीदास जी का भाई कहा है और रामपुर का निवासी कहा है। कैसा भाई ? यह स्पष्ट नहीं। साथ ही वार्ता में न चन्द्रहास की चर्चा है, न उनके वंश का परिचय। फिर रामपुर पूर्व में था। रामपुर मथुरा-गोकुल से इतनी दूर नहीं कि मथुरा तक पहुँचने में "कछुक दिन" लगते[१]। आज सोरों से मथुरा यदि पैदल भी जाया जाय, तो केवल डेढ़ दिन लगेंगे। 'कछुक दिन' नहीं। अतः नन्ददास वाला रामपुर मथुरा से काफी दूर पूर्व में होना चाहिए। जिसको चलने में 'कछुक दिन' लगने चाहिए। फिर वृन्दावन के मदनगोपाल जी का रघुनाथ होकर दर्शन देना वार्ता में नहीं। भक्तमाल की टीका में है। जो अनुश्रुति की परम्परा के अनुसार है। अतः 'वार्ता' से 'सोरों की सामग्री' का कोई सम्बन्ध नहीं। दन्त कथाएँ प्रमाण कोटि पर नहीं ली जा सकतीं। इधर खेद है हिन्दी के कतिपय विद्वान् दन्त-कथाओं के आधार पर महत्वपूर्ण प्रश्नों को सुलझाने की चेष्टा कर रहे हैं।

अब यहाँ मैं पुनः शास्त्रीजी की पुस्तिका के कुछ अंश की—(भूमिका-भाग) की चर्चा करूँगा जो नितान्त भावावेश अन्धोल्लास में लिखी गई है। जिसमें संयम और तर्क को किंचित् ही स्थान दिया गया है। इस पुस्तक में दी गई भूमिका के लेखक हैं—कासगंज के श्री वेदव्रत शर्मा शास्त्री। इसमें एक स्थान पर लाला प्यारेलाल की रामायण का हवाला है। यह दरमतब हिन्दू प्रेस की है और संवत् १६२८ की छपी है। इसमें भी 'सोरों' जन्म-स्थान नहीं लिखा। इसमें 'सूकर खेत' 'वाराह अवतार' वाला सोरों गुरु नरहरि का स्थान माना है। इससे तुलसी की विद्या-भूमि तो संभव हो सकती है। पर इससे जन्म-स्थान कतई सिद्ध नहीं होता। शर्माजी ने अपने गुरु शास्त्रीजी को 'हिन्दी संसार का सजग प्रहरी' का फतवा देकर गुरु-दक्षिणा

२५२ वार्ता—भावनात्मक संस्करण—सं० द्वारकादास परिख पृष्ठ २५६।

चुकाई है। भावुक शर्माजी ने पता नहीं किन साहित्यकारों की ओर लक्ष्य करके लिखा है—"शास्त्री जी ने आत्म-विश्वास के साथ गोस्वामी जी का जन्म-स्थान सोरों वा राजापुर" शीर्षक लेख लिख कर ही समस्त अहंमन्य साहित्य स्रष्टाओं के आसन तिलमिला दिए थे।" प्रथम तो शर्माजी से निवेदन है कि आसन 'डोल' अवश्य जाते हैं, तिलमिलाते नहीं। 'तिलमिलाना' मनुष्यों के स्वभाव के पल्ले पड़ा है। फिर, जिन साहित्यकारों की ओर उनका लक्ष्य है, उनके नाम देने में उन्हें क्या भय था ? 'सत्यमेव जयते' एक शाश्वत नियम है। अतः इस उक्ति में सिवाय भावुकता के और कुछ नहीं।

अब यहाँ जिस सामग्री के आधार पर तुलसी को सोरों का सिद्ध करने की चेष्टा की जा रही है, उस पर भी विचार कर लेना उचित होगा। शास्त्रीजी की पुस्तक में सोरों सामग्री के नाम पर छः ग्रन्थों के नाम दिए गए हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) श्री सूकर क्षेत्र सोरों माहात्म्य—रचयिता—श्री कवि कृष्णदास-अष्टछाप के कवि नन्ददास के तथा-कथित पुत्र। रचना-काल सं० १६७० लेखक—पं० मुरलीधर चतुर्वेदी लेखन-काल १८०९ वि०

(२) वर्षफल—रचयिता कवि कृष्णदास रचना-काल सं० १६५७, लेखक श्री रुद्रनाथ लेखन-काल सं० १८७१।

(३) दोहा रत्नावली—लेखिका कवयित्री रत्नावली रचना-काल अनुमानतः सं० १६०४-१६४२ के मध्य। लेखक गंगाधर ब्राह्मण लिपि-काल सं० १८२९।

(४) रत्नावली चरित—रचयिता पं० मुरलीधर चतुर्वेदी रचना-काल सं० १८२९ लेखन-काल सं० १८२९।

(५) अष्टसखामृत—श्री प्राणेश—लेखक श्री ग्वालदास—लेखन-काल सं० १७६७।

(६) तुलसी प्रकाश-रचयिता—अविनाश राय ब्रह्म भट्ट—रचना-काल १६७७, लेखक—मुन्शी रामदीन चित्रकूट, लेखन-काल-१८८९।

नीचे हम इन पुस्तकों पर पृथक्-पृथक् रूप से विचार करेंगे—

(१) सूकर क्षेत्र माहात्म्य—यह नन्ददास जी के पुत्र कृष्णदास विरचित कही जाती है। इसकी केवल प्रतिलिपि उपलब्ध है। मूल पुस्तक के एकाध पृष्ठ ही अवशिष्ट कहे जाते हैं। लेखन-काल तथा रचना-काल में १३९ वर्ष का व्यवधान है। नंददास के न तो विवाह की पुष्टि होती है और न पुत्रोत्पत्ति की। ऐसी दशा में सूकर क्षेत्र माहात्म्य के मूल लेखक कृष्णदास कौन थे? यह बड़ा विवादास्पद विषय है। फिर सूकर क्षेत्र माहात्म्य के सुखावह, बिलगाय, पारमिका, अवगाहि, अकुपारा ये शब्द सोरों में प्रचलित नहीं। इसकी भाषा संदेहपूर्ण है।

(२) वर्षफल सं० १८७१ का है। यह भी पूर्ण रूपेण कृष्णदास के हाथ का नहीं। जो एक पत्र का फोटो दिया है। उससे तिथि स्पष्ट नहीं। बीच के २१४ वर्ष का हिसाब नहीं।

(३) दोहा रत्नावली का लिपिकाल–१८२९ दिया है। यह भी मूल रूप में प्राप्त नहीं। दोहा रत्नावली की भाषा बड़ी संदेहपूर्ण है। 'जंचिगई' आदि शब्द अर्वाचीन है। उसमें 'बदरिका' शब्द आया है, वदरिया नहीं। फिर इसमें अनेक ह्रस्व उकारांत शब्द आए हैं जो सोरों में प्रचलित नहीं।[1] शब्द प्रयोगों में एकता (Uniformity) नहीं। यह अर्वाचीन रचना हैं और किसी स्थानीय कवि ने परित्यक्ता रत्नावली की सहानुभूति में लिख डाली है। इसके भी बीच के १८७ वर्ष का हिसाब नहीं।

(४) रत्नावली चरित-किम्वदंतियों पर आधारित कथा को पद्य बद्ध किया गया है। एक स्थान पर उन्हें 'रामपुर' का बताया

१—रत्नावली दोहा १७३ एकुं एकुं आषरु

गया है—और दूसरे स्थान पर जोगमार्ग मुहल्ले का 'वसत जोगमारग समीप'[1] इससे विदित होता है कि स्थान की गौरव वृद्धि से प्रेरित होकर ही उक्त चरित किम्बदंतियों के आधार पर लिख डाला गया है। रामपुर से कवि अथवा उसके पूर्वज योगमार्ग में कैसे आये क्यों आए ? यह स्पष्ट नहीं। 'तुलसी प्रकाश' की सास-बहू की लड़ाई की यहाँ अथवा अन्यत्र पुष्टि नहीं होती। उसकी चर्चा रत्नावली चरित में भी नहीं। सोरों सामग्री के सभी ग्रन्थ किंवदन्तियों के आधार पर समय-समय पर लिखे जान पड़ते हैं। इसी रत्नावली चरित में तुलसी के दो स्थान आगए हैं—योगमार्ग तथा रामपुर[2]। इसी में अन्तिम शब्द 'कहानि'[3] आख्यायिका के अर्थ में आया है जो आधुनिकतम है।

कृष्णदास कृत वंशावली में नन्ददास चन्द्रहास तुलसी के चेचेरे भाई कहे गये हैं। 'वार्ता' में यह कहीं नहीं है। उसी प्रकार भक्त-माल में भी नहीं। अष्ट सखामृत के लेखक प्राणेश कवि वल्लभ के समकालीन वताए जाते हैं, किन्तु न तो उनकी चर्चा ८४ वार्ता में है, न २५२ में। और न अन्य वार्ता साहित्य में। वे वल्लभ के समकालीन किस आधार पर कहे गए हैं, पता नहीं।

अष्टसखामृत—इस ग्रन्थ की सबसे प्राचीन प्रति म्होटा मन्दिर भूलेश्वर वम्बई की है। उसमें संवत् १७६७ दिया है।[4] 'प्राणेश' गोस्वामी गोकुलनाथ जी के शिष्य प्रतीत होते हैं। उन्होंने मंगलाचरण में 'गोकुलेश' का स्मरण किया है और परम्परा अनुसार वल्लभ वंश दिया हुआ है। यदि कवि प्राणेश को वल्लभ का समकालीन मान लें, तो वह मंगलाचरण में गोकुलेश मथुरेश को प्रणाम न करता।

१—चौपाई रत्नावली चरित

२—कवहुँ 'रामपुर' वसति जाइ।

३—साध्वी रत्नावलि 'कहानि'॥

४—यह समय हरिराय जी की विद्यमानता का है।

सम्प्रदाय वाले जानते हैं कि सम्प्रदाय में महाप्रभुजी एवं गोसांईजी की मान्यता भगवान् के तुल्य ही है। अतः प्राणेश परवर्ती कवि है, वल्लभ का समकालीन नहीं। फिर महाप्रभु वल्लभ सम्प्रदाय में 'हरिअंश'[1] नहीं माने जाते। वे भगवत् वदनावतार अथवा अग्निकुमार माने जाते हैं। अष्टसखा भी 'सुर-अंश' नहीं। वे भगवान् के गोप सखा के अवतार हैं। प्राणेश ने अष्ट सखाओं का परिचय "निज परचै परमान"[2] दिया है। जिसमें किंवदन्ती की ध्वनि स्पष्ट है। श्री वल्लभाचार्य का समकालीन व्यक्ति ऐसी भूलें न करता। इसमें आगे चलकर रामपुर से श्यामपुर करने की बात है। 'वार्ता' से इसकी पुष्टि नहीं होती और न किसी अन्य साक्ष्य से। 'कृष्ण राम के रूप भये'[3] की कथा भक्तमाल की टीका में और प्रकार से है, किन्तु 'वार्ता' में यह कथा गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी के पाँचवें पुत्र रघुनाथ जी से सम्बन्धित है।

(६) तुलसी प्रकाश–इसमें रामपुर को 'राजौरिया' कहा है। राजौरिया अर्थात् राजा का निवास। रामपुर को 'राजापुर' भी कहा जाता रहा होगा। राजा की राजधानी को राजनगर, राजापुर कहने की पुरानी चाल रही है। राम राजा है अतः उनके नाम के कारण रामपुर को 'राजापुर' वहाँ के निवासी कहते रहे होंगे। यों तो रामपुर अयोध्या[4] के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वार्ता में अहमदाबाद के लिए राजपुर, राजनगर अनेक स्थलों पर आया है। अतः यह राजापुर ही रामपुर हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

१—अष्टसखा का दोहा २६।

२— वही दोहा १५।

३—गौ० तुलसीदास पृ० ६६।

४—पहुँचे दूत रामपुर पावन।

इसी ग्रंथ में भी ह्रस्व अकारान्त और उकारान्त दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं जो और भी संदेह की पुष्टि करते हैं। तात्पर्य यह है। कि "सोरों सामग्री" के नाम से उपलब्ध सामग्री किम्वदन्तियों के आधार पर कतिपय पूर्वजों के द्वारा स्वाध्याय और वाग्विलास के निमित्त लिख डाली गई है। उसमें शब्द प्रयोग, तिथियों एवं स्थान सम्बन्धी अनेक भ्रम हैं। रामपुर, राजापुर, बदरिया, वदरिका, बाराह खेत, सूकर क्षेत्र, ताली (तारी) आदि ये सभी स्थान जिला बांदा में भी मिलते हैं।

मानस के मंगलाचरण के सोरठे के "नर रूप हरि" को नरसिंह के अर्थ में लिया है। अनेक विद्वान् उसे नर रूप "हर" ही शुद्ध मानते हैं क्योंकि सोरठे के दूसरे चरण का अंतिम शब्द भी ह्रस्व अकारान्त "निकर" है।

सोरों सामग्री के खण्डन में डा० माता प्रसाद जी के तर्क पर्याप्त पुष्ट हैं। और उनकी पुस्तक "तुलसीदास" में वे दिए गए हैं। मैं उन अकाट्य प्रमाणों की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता। श्रीरामबहोरी शुक्ल ने राजापुर के पक्ष में पर्याप्त सबल प्रमाण दिए हैं। उन प्रमाणों में "संत तुलसी साहब" जो दक्षिण के थे और जिनका पूर्व नाम "शामराव" था जो अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए उत्तर भारत में चले आए थे और हाथरस में रहने लगे थे—उनके भी संक्षिप्त चर्चा यहाँ कर देना चाहता हूँ। संत तुलसी साहब एक वीतरागी महात्मा थे। उनके लिए राजापुर की अपेक्षा सोरों अधिक निकट था, फिर उन जैसे महात्मा के लिए किसी विशिष्ट स्थान से प्रेम और द्वेष की बात नहीं मानी जा सकती। उन्होंने अपनी आत्म-चर्चा में सोरों की चर्चा तक नहीं की। उनके अप्रमाणिक मानना हठ धर्मीपन ही कहा जायगा।

(१) इसके अतिरिक्त मेरा अपना मत है कि तुलसी ने अयोध्याकाण्ड में जहाँ तापस प्रसंग की चर्चा की है, वहीं कहीं उनका जन्म स्थान है। और मैं उस संकेत के देने वाले विद्वानों से पूर्ण सहमत हूँ। तापस प्रसंग एक महत्वपूर्ण सप्रयोजन स्थल है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(२) तुलसी में राष्ट्रीय भावना पर्याप्त रूप से विद्यमान है। वे यत्र-तत्र भगवान् राम से अवध को प्रणाम कराते हैं। ऐसा मातृभूमि का प्रेमी कवि अपनी निज मातृभूमि की किसी भाँति उपेक्षा नहीं कर सकता था। वैसे भी तुलसी ने अपने से सम्बन्धित सभी स्थानों को अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र सादर स्मरण कर लिया है। राम-कथा सुनने का स्थल "सूकर खेत" अवश्य दिया है। यही एक शब्द संपूर्ण समस्या के मूल में है। इसके अतिरिक्त तुलसी के द्वारा और कोई चर्चा सोरों के सम्बन्ध में कहीं नहीं।

(३) तुलसी ने अपने गुरु के रूप में भगवान् शंकर को ही सर्वत्र महत्व दिया है। नर-रूप हर में भी शंकर से ही तात्पर्य है। मानस में सर्वत्र शंकर को ही गुरु-रूप में मान्यता देते चले आए हैं। "बोधमय शंकर" जो परम वैष्णव एवं राम-भक्त हैं' वहीं तुलसी के इष्ट हैं। परम भक्त तुलसी जो पदे-पदे गुरु को स्मरण करता है, राम-कथा सुनाने वाले "नरहरि" को ऐसे श्लिष्ट पद में डाल कर प्रत्यक्ष स्मरण से क्यों बचा रहा, समझ में नहीं आता। सन्तों एवं भक्तों ने अपने आध्यात्मिक गुरुओं को एक से अधिक बार अत्यन्त निष्ठाभिभूत होकर स्मरण किया है। तुलसी जैसे श्रद्धावान् शील-सम्पन्न सच्छिष्य ने अपने गुरु को ऐसे अमहत्वपूर्ण रूप से क्यों स्मरण किया? इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि कवि

ने राम-कथा के आद्य गुरु शंकर को ही मानवाकार रूप में मान कर प्रणाम किया है।

सोरों गंगा का अथवा वाराह का क्षेत्र है। कवि यदि वहाँ जन्मा होता' तो कहीं किसी मंगलाचरण में अवश्य स्थान देवता वाराह जी की भी आस्तिकता और भक्ति-पूर्वक स्मरण करता और प्रणाम करता। परन्तु स्मार्त वैष्णव तुलसी में वाराह भगवान् की चर्चा इष्ट रूप में तो क्या सहज स्थान देवता के रूप में भी कहीं नहीं स्मरण करता। सोरों पुरारि मुरारि[1] से परे 'वाराह' का स्थान है।

इस दिशा में एक प्रयत्न पं० रामदत्त भारद्वाज का और है। उन्होंने १९४९ में बम्बई से "तुलसीदास का घर-बार" नामक पुस्तक छपवाई है। उसमें उन्होंने "मूल गोसाई चरित" "तुलसी चरित एवं "घट रामायन" को अमौलिक, जाल एवं अप्रमाणिक सिद्ध किया है। भारद्वाज जी ने बड़े लचर प्रमाणों को देने की चेष्टा की है। उन्होंने "तुलसी प्रकाश" में दी गई उन्हीं घटनाओं को प्रामाणिक मान लिया है। जब कि यह पुस्तक स्वयं प्रामाणिक सिद्ध नहीं हो सकी है। इसकी समस्त घटनाएँ जो मूल गुसाई चरित और भक्तमाल में थोड़े से हेर-फेर के साथ एक-सी मिलती हैं। श्री भारद्वाज जी ने नंददास जी के उस कथन की उपेक्षा कर दी है जिसमें उन्होंने अपने गुरु भाई तुलसीदास को प्रणाम किया है और अपने गुरु शेष सनातन बताए हैं। इस प्रकार सोरों सामग्री पोषक महानुभावों ने अपनी 'उड़ान' की सहायक सामग्री को तो गपक लिया है और शेष को हानिकारक जान कर नहीं छुआ है। यह सब केवल वाराह क्षेत्र के मोह में आकर।

१—जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि पुरारि को।

इसी प्रकार "घट रामायण" को उन्होंने अप्रामाणिक किस आधार पर कह दिया, इसे भारद्वाज जी ही जाने। यह इसीलिए कि उससे उनका सोरों का पक्ष खण्डित होता है। घट-रामायण की मान्यता आज तुलसी साहब के भक्तों में कितनी है, इसे शायद भारद्वाज जी नहीं जानते। फिर, अभी हाल के लिखे गए तुलसी साहब पर एक शोध प्रबन्ध में घट रामायण की प्रामाणिकता पर काफी अच्छे प्रमाण उपलब्ध किए गए हैं। उनका यहाँ विस्तार करना अनावश्यक है। परन्तु मैं यहाँ इतना ही कहूँगा कि "मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतिकी" वाली बात विद्वान् साहित्यिकों को नहीं करनी चाहिए। उपर्युक्त तीन प्रामाणिक ग्रंथों से सोरों का पक्ष सिद्ध नहीं होता। अतः वे अप्रमाणाणिक करार दे दिए गए, यह ठीक नहीं। फिर आगे चल कर 'वार्ता साहित्य' एवं अन्य प्रामाणिक ग्रंथ भी सोरों के विपक्ष में होने से अप्रामाणिक ही कहे जावेंगे।

अन्तस्साक्ष्य—

तुलसी के ग्रथों में अन्तस्साक्ष्य रूप में जिन स्थानों की चर्चा है, उनमें सोरों का नाम कहीं नहीं। स्थान के उपरांत अब अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत तुलसी की भाषा पर भी थोड़ा विचार आवश्यक है। तुलसी की भाषा अवधी और ब्रज दोनों है। अवधी उनकी मातृभूमि की भाषा है और ब्रज तत्कालीन मान्य काव्य भाषा होने के नाते। सोरों न तो अवधी क्षेत्र में है न ब्रज में। हाँ, ब्रजभाषा क्षेत्र के मध्य में अवश्य है। अतः भाषा के आधार पर तुलसी को कन्नौज और सोरों का मान लेना कहाँ तक उचित है, इस पर भी विचार कर लेना चाहिए। यहाँ तुलसी के प्रयुक्त कतिपय शब्द दिए जाते हैं जो सोरों में प्रचलित तो क्या परिचित भी नहीं। यथा-चाहि (अपेक्षा), नीको (अच्छा), २–खोरि (दोष), ३–जाय (व्यर्थ), ४–सरा (चिता) ५–गुडी

(पतंग) ६–पैंत (बाजी), ७–गथ (दाम), ८–भदेस (बुरी), ९–औंले[२] (गीले) १०–ओल (गिरवी) आदि। इसके अतिरिक्त सोरों में 'नाइन' बोलते हैं तुलसी ने नहछू में 'नउनियां' प्रयोग किया है, जो अवध की ओर ही चलता है। सोरों में नाइनें दूल्हे को केवल स्नान उबटन कराती है और जाति में निमंत्रण देती हैं। किन्तु क्षुरादि का काम पुरुष नाई ही करते हैं। किन्तु पूरब में स्त्रियाँ भी क्षुरादि का कार्य कर लेती हैं। इधर पश्चिमी जिलों में स्त्री वर्ग में नाइन और मालिन ही मांगलिक अवसरों पर कार्य करने आती हैं। शेष कार्य सब पुरुष करते हैं, जैसे—दर्जी, तंबोली, मौची आदि। किन्तु 'नहछू' से अवध प्रान्त की रिवाज का पता चलता है। तुलसी ने वहां की परिपाटी के अनुसार दरजिनि, तंबोलिनि, मोचिनि, बरिनियां आदि स्त्री वर्ग को पूरब की रिवाज के अनुसार ही नहछू संस्कार के अवसर पर रखा है। फिर 'नहछू का रिवाज पूरब में है, इधर सोरों की तरफ नहीं। इसी प्रकार–

हरवा (हार), गरवा (गला) आदि में अवधी का 'वा' प्रत्यय है। सोरों में हरवा गरवा लुटवा आदि नहीं बोले जाते। 'निगा नांग'[४] (निपट नंगा) प्रयोग ठेठ अवधी का है। सोरों में इसे कोई जानता तक नहीं।

डहकनु[५] (धोखा) अवधी शब्द है। कनखियनु, अंखियनु, नारियरु, पगु, बिनु, जगु, जसु, जपु, हितु, जानु, मानु, प्रतापु, आदि ह्रस्व

१—कुलसहि-चाहि कठोर अति० (उ० का०)।

२—आलेहि बांस के मांडव (रामलला नहछू)।

३—कविता उत्त० ११६।

४—निगा नांग करि नितहि नचाइहि नाव। बरवै अयो०

५—डहकनु है उजियरिया-बरवै सुन्दर।

उकारान्त शब्द अवधी में ही प्रयुक्त होते हैं। मानस तथा तुलसी के अन्य ग्रन्थों में अवधी-बैसवाड़ी प्रयोगों का बाहुल्य मिलता है।

उदाहरणार्थ:—

करब, जानब, भरब, लुनिय, होउब, कहब, भविष्यत् कालीन क्रियाओं के ये अवधी रूप है। कोहाब (कलह), साहिव, ठाहर (करहु कतहु अब ठाहर ठाठू)[1] फुर; मोट, ढरके, सबतियां (सौत), बुझार गुदारा, (भा भिनुसार गुदारा लागा) बाट, कठौता, बिआही, रजाइ (आज्ञा) रोरे, थूनी (छप्पर का स्तम्भ) सहिदानी, सहिदानु[2] लोई[3]। (हम नीके देखा सब लोई[4]) (गहरु जनि लावहु[5]।) चपरि[6], रहस (हर्ष) आदि अवधी के अपने प्रयोग हैं।

निम्नांकित संस्कारों के नाम पूरब में इस प्रकार हैं:—

अवध में विवाह पर	सोरों में विवाह पर
सिंदूरबंदन	सुमंगलीकरण
होमलावा अथवा लावाहोम	लाजा होय
सिलपोहनी	अश्मारोहण; सिलाचढ़ी
कोहबर	बरोनियां
दुरी दुरा	सोरों में इसका प्रचार नहीं
लहकौर (छोटी लड़कियां)	लरकिनीं-ल्हौरी
लघुकौर	मौंह जुठारनी

१—सुन्दरकाण्ड।

२—सुन्दर काण्ड तथा वैराग्य संदीपिनी ३३।

३—वैराग्य सं० ४०।

४—जानकी मंगल १८६

५—जानकी मंगल ६१

६—जानकी मंगल ९४

कुछ क्रिय-पद—

घ्यायबी, करबी, खाइबी, जाइबी, राखबि। सोरों में कहीं नहीं बोले जाते।

परेउ निसानहिं घाउ[1] (चोट)

बिलगु[2] न मानब (बुरा न मानना)

उहार=(पर्दा) जा० मं० ११६

जनेत=(बरात) पा० मं० ३५

माहुर=(विष) मानस एवं पार्वती मंगल ३५

घारि=सेना मानस पा० मं० ३५, सौतुख[3] (प्रत्यक्ष), कनउड़[4] अनुहारि, भभरि, सुपास (सुविधा), सुआर=(रसोइए) आदि-शब्द सोरों में प्रयुक्त नहीं होते।

इसके अतिरिक्त कबीर की शैली पर तुलसी का लिखा विनय-पत्रिका का प्रसिद्ध पद सोरों का निवासी कदापि नहीं लिख सकता।

राम कहत चलु राम कहत चलु, राम कहत चलु भाइरे।
नांहित भव बेगारि महं परिहौ, छूटत अति कठिनाई रे।
बांस पुरान साज सब अटखट, सरल तिकौन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु डोलारे।
विषय कहार मार मदमाते, चलहिं न पाऊं वटोरा रे।
मंद विलंद अभेरा दलकन, पाइय दुख झकझोरा रे।
कांट कुराय लपेटन लोटनु, ठाँवहिं ठांव बझाउ रे।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे।

१—जानकी मंगल १६०

२—जानकी मंगल १०८ एवं अयो० मानस पार्वती मंगल २७

३—तेखौं सपन कि सौंतुख ससिसेखर सहि। पा० म० ४३

४—पा० मं० ४५

मारग अगम संग नहिं संवल, नाऊं गाऊं कर भूला रे।
तुलसिदास भव त्रास हरहु अब, होउ राम अनुकूला रे।।

यहाँ दिहल बझाउ, नाऊं गाऊं, चलिय, आदि शब्द अवधी के हैं।

'निरापने' (विराने) वि० प० १६०

सिविका—पालकी

डासत (बिछाते हुए) मानस तथा वि० प० २४५ आदि। शब्द पूरव के हैं। कुछ और विशिष्ट शब्द उराउ (उत्साह), पगारु, खूसर (उल्लू), सालिम (सकुशल) भेदस, सही भरी (अनुमोदन करना), साको (नाम करना), सरीकता (भाग, हिस्सा), मतेई (विमाता), टेई (पैनाना), पठावनी (मजूरी) सोरों वाले नहीं जानते। अवधी में भी गो, भो बोला जाता है। सोरों में गओ, भओ चलता है। उसी प्रकार कैंधौ, निबुकि (उछल कर), हुनैं (होम करें), दाढ़ी जार, पाइमाल (तबाह), धौंज (दौड़), औंजि (घबराकर), ओल (गिरवी) डफोरि (चिल्लाकर), जांगरू (भूसा), चांपना (दबाना), चाकि (सुरक्षित) बिड़ (नीच), दहपट (चौपट), खिरिरि (खरोंचकर), भाँडिगो (घूम फिर गया) अवधी के नित्य-प्रयुक्त शब्द है। साँठ (पीछे लिए), कहरी (उत्पाती) बहरी; बाज, फग, दांव पवाँरो (फेंकना) चकोट (चुटकी) सरखतु; रखतु; पखानां (आज्ञापत्र) लसम (निकम्मा) ओड़िए (फैलाइए) साटक (निस्सार) उपखानु (उपाख्यान) किसब (कारीगरी) कबारु (धंधा) जैवनार, गौहारि पुकार खपु (क्लेश) फेकरहिं (सियारका चिल्लाना) इनके लिए सोरों में दूसरे-दूसरे शब्द प्रचलित हैं। वहाँ उच्चारण भेद भी बहुत है।

कतिपय प्रयोग—

१—कहां जाइ का करी? (कवि० उत्त० ८७) फुरि बात; (गीता०)

२—आपने चना चबाई हाथ चाटियतु है। डाटियतु है। काटियतु है। मसक की पांसरी पयोधि पाटियतु है। करिहों न हहा है। तिहारे

हिऐं न हिते हौं, चितै हों; जाऊ (ज्यायान् अथवा पुश्तेनी (कविता उ० १२२) 'बजाइ' ठोक बजाकर प्रसिद्ध करके) (अवधी; सोरों में यह शब्द परस्पर संघर्ष लड़ाई के लिए आता है।) आदि प्रयोग सोरों से कोसों दूर के हैं। भूने (बारीक) सोरों में यह प्रयोग नहीं। ब्रज में झीना चलता है। 'सावज'=हिंस्र पशु (मानस अयो-कवि उ० १४२) सीठ (रूखा) खांगो (अभाव) (मानस अर० कवि० उ० १५३ मांगो देह नाथ केहि खोगे) (माँजा=वर्षा का प्रथम जल) पूरब के शब्द हैं।

व्यावसायिक शब्द

उपरोहित[1], व्यवहरिया[2], धनिक[3], आगमी[4], (ज्योतिषी) अवध की ओर के ही शब्द हैं। बटमार[5], भंड[6] आदि इधर पश्चिम के शब्द नहीं।

स्थान सम्बन्धी शब्द :—

चऊहट्ट, सुवट्ट[7]

संगीत वाद्य :—

सहनाई, आउज, डफ[8] सोरों में नहीं होते।

(१) तात्पर्य यह कि तुलसी में ठेठ बोलचाल के शब्द अवधी और अवध प्रान्त से ही सम्बन्धित हैं। संस्कार, रीति-रिवाज, भोजन,

१—राजा के उपरोहितहिं हरि ले गयउ बहोर-मा० बा०

२—अब आनहु व्यवहरिया बोली। मा० बा०

३—देबे को न कछू रिनियाँ हों धनिक स्वपल लिखाउ। वि० प०

४—अवध आजु आगमी एकु आयो-गीतावली

५—दोहा ५४६

६—दोहा ५४६

७—मानस सुन्दरकांड

८—गीतावली १, २

सम्बन्धित शब्द प्रयोग एवं रिवाज अवध प्रान्त के हैं। सोरों के अथवा पश्चिम के नहीं।

(२) ध्वनियों के अन्तर्गत 'ष' और 'ख' दोनों ध्वनियों के बोध के लिए एक ही रूप 'ष' का व्यवहार तुलसी की कृतियों की लगभग सभी हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त है। अवधी के कवि लालदास के 'अवधविलास' जैसे ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों में यह परम्परा सुरक्षित मिलती है। कबीर की भी हस्तलिखित प्रतियों में यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। 'सोरों सामग्री' में यह प्रवृत्ति कहीं नहीं दृष्टिगत होती।

(३) तुलसी की समस्त रचनाएँ निम्नांकित ५ वर्गों में आती हैं—

१—पूर्वी अवधी—बरबे, रामलला नहछू।

२—पश्चिमी अवधी—जानकी मंगल, पार्वती मंगल।

३—बेसवाड़ी अवधी—रामचरित मानस।

४—पश्चिमी ब्रजभाषा—गीतावली, विनय-पत्रिका, दोहावली, वैराग्य-संदीपिनी।

५—पूर्वी ब्रजभाषा जिसमें सोरों आता है—श्रीकृष्ण गीतावली एवं कवितावली।

कवितावली में पुनः अनेक अवधी शब्द स्वभावतः घुस आए हैं। बेसवाड़ी-अवधी की एक उपबोली है। इसे 'कोसली' भी कहते हैं। 'कोसल' अवध का प्राचीन नाम है। अतः इसे भी अवधी ही कहना चाहिए। इसका क्षेत्र लखनऊ, उन्नाव, खीरी, रायबरेली, फतहपुर, बहराइच तथा बाराबंकी गोंडा तथा आसपास के अन्य जिले और दक्षिण में भोजपुरी तक इसका क्षेत्र फैला हुआ है।

तुलसी की रचना का क्षेत्र इस प्रकार अवधी ही है। अतः भाषा और भाषा शास्त्रीय दृष्टि से तुलसी सोरों के नहीं ठहरते।

'गृह-सामग्री' के नाम से कही जाने वाली सामग्री में भवन, वंशज, जनश्रुति, भाषा-शैली और पाण्डु-लिपियाँ और तुलसी के वचन इन सबके लिए निम्नांकित निवेदन है—

अ—भवन—योगमार्ग मौहल्ला और मकान विषयक उक्तियों के विषय में तुलसी के अपने कथन कहीं नहीं मिलते, न अन्य पुष्ट प्रमाण ही मिलते हैं। जो प्रमाण दिए गए हैं वे संदिग्ध और एक देशीय हैं। अन्य स्थानों से तुलसी का अपना कोई सम्बन्ध नहीं।

(आ) वंशज—अपने को तुलसी का वंशज कहने वाले राजापुर की तरफ भी मिलते हैं। और आचार्य शुक्ल जी उनकी ननिहाल के वंशजों में से थे। सोरों वाले व्यर्थ ही ऐसा कहकर अपने को गौरवान्वित करना चाहते हैं।

(इ) जनश्रुतियाँ, फरमान आदि साक्ष्य सोरों के विपक्ष एवं राजापुर के पक्ष में भी बहुत उपलब्ध है।

(ई) भाषा शैली पर ऊपर काफी विस्तृत रूप से कहा जा चुका है।

(उ) पाण्डुलिपियाँ जो अयोध्या के कनक भवन एवं मानस हंस विजयानन्द त्रिपाठी ने वताई हैं वे अधिक प्रामाणिक हैं। वैसे तुलसी की मानस की अनेक प्रतियाँ (१६वीं १७वीं शताब्दी की) अन्यत्र भी कई स्थानों पर सुरक्षित हैं और उपलब्ध हैं। बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत आने वाले गजेटियर्स में से एक ने भी उनका जन्म-स्थान कहीं नहीं स्वीकार किया है।

वार्ताएं सोरों के प्रतिकूल पड़ती हैं। भावप्रकाश और वचनामृत भी सोरों के प्रतिकूल पड़ते हैं।

कतिपय निष्कर्ष—

(१) 'सोरों सामग्री' के नाम पर उपलब्ध वस्तुओं में से एक भी पूर्णतया एवं कठोर प्रामाणिकता के साथ प्राप्त नहीं। सबमें समय सम्बन्धी भूलें हैं।

(२) जनश्रुतियों एवं किंवदन्तियों के जाल में सत्य इतना ढक गया है कि किसी तथ्य पर पहुँचना कठिन हो रहा है।

(३) तुलसी ने वाराह भगवान्, वाराह कुण्ड, नरहरि के उपास्य मारुति आदि की चर्चा नहीं की। सोरों में रामानंद संप्रदाय के भक्त न कभी थे, न आज हैं।

(४) 'सोरों सामग्री' में आत्म-विज्ञापन का भाव भरा है।

मेरा अपना मत—

अभुक्त मूल में उत्पन्न होने के कारण तुलसी ने धात्री के पास शैशव व्यतीत किया। कुछ काल पश्चात् धात्री के दिवंगत हो जाने पर निराश्रित तुलसीदास राम नाम लेकर भटकते रहे और किसी प्रकार पेट की 'बड़वाग्नि' को शान्ति करते रहे। इससे उनका नाम 'राम बोला' पड़ गया। लगभग १०-१२ वर्ष की अवस्था में तुलसीदास जी को वहीं के 'सूकर खेत' के निवासी कोई राम-भक्त संत जो चित्रकूट आदि स्थानों में भ्रमण करते होंगे, तुलसी को अपने साथ लेकर सूकर खेत चले आए, और विद्या अध्ययन कराने के साथ-साथ राम कथा भी सुनाई। विद्या की समाप्ति पर तुलसी का विवाह विद्या गुरू के मार्फत ही हो गया और पत्नी में आसक्त तुलसीदास पत्नी से उद्‌बोधन पाकर पुनः अपने ग्राम राजापुर चले आये। और कुछ काल अपनी जन्म-भूमि में रहे भी। इसके अनन्तर कभी वे अयोध्या, कभी काशी, कभी प्रयाग और कभी चित्रकूट रहे।

यह 'सूकर खेत' गोंडा जिले का है, जिसे भ्रम से गजेटियर में जिले ऐटा का लिख दिया गया है। अतः गुरू का आवास स्थान होने से और यह स्थान सामान्य कोटि का होने से तुलसी ने उसकी कोई महत्वपूर्ण चर्चा नहीं की। न उसे किसी वाराह से सम्बन्धित बताया। तुलसी के गुरु रामानंद की शिष्य परम्परा में थे, किन्तु उनसे कवि ने शंकर-विष्णु की अभदे दृष्टि पाई। अतः वे गुरुदेव उसके लिए साक्षात् नर-रूप 'हर' थे। इन्हीं आन्तरिक कारणों से तुलसी ने मानस की भूमिका में शिव-पार्वती संवाद को बड़ी मुख्यता दी है। 'तुलसी के गुरु' इस विषय पर अपना मत फिर कभी विद्वानों की सेवा में प्रस्तुत करूँगा।

मूल्य ३७ नया पैसा

मुद्रक—
आदर्श प्रेस अलीगढ़।